171

(क) लेख हरिजन आदिवासी कानून एक समीक्षा।
(ख) कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर।
(ग) श्री ओमपाल सिंह , धार्मिक कट्टरवाद पर लेख
(घ) श्री एम.एस. सिगला,हिंदू कोड बिल।
(च) श्री राजकुमार शर्मा,देश को नायक की आवश्यकता

(क)हरिजन आदिवासी कानून एक समीक्षा

समाज में धूर्त और शरीफ रूप में दो गुट भी हमेशा ही बने रहते है और इनके बीच टकराव भी। यदि बुद्धिजीवी और श्रमजीवी के रूप में समाज का आकलन करें तो धूर्तता का अधिकांश प्रतिशत बुद्धिजीवियों के बीच ही घुला मिला रहता है। श्रमजीवियों में ऐसा प्रतिशत नगण्य ही रहता है क्योंकि सफल धूर्तता के लिये जितनी कला कौशल साधन और संगठन की आवश्यकता होती है वह श्रमजीवियों में पास होता ही नहीं।

बुद्धिजीवियों की धूर्तता से श्रमजीवियों की सुरक्षा के लिये भी बुद्धिजीवी ही कुछ कर सकते हैं क्योंकि श्रमजीवियों में न तो धूर्तता करने की क्षमता होती है न ही उससे बचने की। वह तो बेचारा बुद्धिजीवियों के ही मार्गदर्शन में लगातार चलता रहता है क्योंकि उसे स्वयं नही पता कि उसे मार्ग दिखाने वालों का स्वयं का उद्धेश्य उनका शोषण है या सुरक्षा।

वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था ऐसी अच्छी समाज व्यवस्था में शामिल थी जो श्रम की उचित सुरक्षा का भी आश्वासन देती थी। धीरे धीरे धूर्त बुद्धिजीवियों ने इस वर्ण जाति व्यवस्था को कर्म से हटाकर जन्म पर आधारित कर दिया और आरक्षण की ऐसी कुटिल व्यवस्था की कि उनके आगे आने वाली पीढ़ियों तक के लिये श्रम का शोषण सुरक्षित हो गया। धीरे धीरे कुछ शरीफ बुद्धिजीवियों की आत्मा जगी और उन्होंने इस बुराई को ठीक करने की कोशिश की। दूसरी ओर कुछ धूर्त बुद्धिजीवियों का स्वार्थ जगा और उन्होंने इस बुराई से लाभ उठाने की कोशिश की। इन धूर्तो ने शरीफ बुद्धिजीवियों के योग्यतानुसार वर्ण और जाति के सार्थक प्रयत्न को पीछे ढकेल कर वर्ण और जाति के अनुसार योग्यता का ऐसा खाका तैयार किया कि इस नये आरक्षण के शब्द जाल से उन धूर्त बुद्धिजीवियों की अपनी और उनके आगे आने वाली कई कई पीढ़ियॉ सुरक्षित हो गई। जातीय आरक्षण का उस समय तक लाभ उठा रहे सवर्ण धूर्तो ने इन अवर्ण धूर्त बुद्धिजीवियों से पहले तो संघर्ष किया और बाद में समझौता कर लिया। धूर्त सवर्णो की स्वतंत्रता के बाद तक की पीढ़िया आज तक समाज में वैसा ही सामाजिक सम्मान पा रही है। दूसरी ओर धूर्त अवर्णो की स्वतंत्रता के बाद बनी नई पीढ़ियॉ अपनी भविष्य की कई कई पीढ़ियों तक का लाभ रिजर्व करा चुकी है। क्योंकि धूर्त सवर्ण बुद्धिजीवियों को परंपरागत सामाजिक आरक्षण का लाभ

उपलब्ध हो रहा है और धूर्त अवर्ण बुद्धिजीवियों को सुधारात्मक संवैधानिक आरक्षण का । शरीफ बुद्धिजीवियों की कर्मणा जाति वर्ण व्यवस्था पूरी तरह असफल हो चुकी है। श्रमजीवी स्वतंत्रता के पूर्व धूर्त सवर्णो से ठगा गया और स्वतंत्रता के बाद धूर्त अवर्णो से। शरीफ बुद्धिजीवियों का प्रयत्न विफल हो गया।

इन धूर्त बुद्धिजीवियों ने सवर्ण और अवर्ण के रूप में दो गुट बनाकर ऐसा नाटक किया कि पूरा मंच इन दोनों के अधिकार में आ गया और श्रमजीवी जमीन पर बैठकर इनके नाटक से ही रस प्राप्त करने लगा। उस बेचारे को पता ही नहीं लगा कि आरक्षण रूपी सूखी हड्डी चबाने से निकलने वाला खुन श्रमजीवियों के अपने ही शरीर का निकला खुन है। इन धूर्तो ने शिक्षा को राष्ट्रीय विकास का आधार बना दिया। इनके चक्रव्युह में फंसकर श्रम बेचारा पचहत्तर रूपये तक के लिये हाथ पांव पटक रहा है जबकि बुद्धि का मूल्य सैकड़ों से हजारों रूपया प्रतिदिन की ओर छलांग लगा रहा है। शिक्षा का बजट बहुत तेज गति से बढाया जा रहा है। किन्तु श्रम का बजट बढ़ाने के लिये इनके पास पैसों का अभाव ही बना रहता है। सोनिया जी ने ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना न चलाई होती तो श्रम तो बेचारा नाटक देखने लायक भी नहीं रहता। गरीब का हाल तो और भी खराब है। भूख का विश्व का न्यूनतम मापदण्ड चौबीस सौ केलोरी प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति का है। जिसका भारतीय मूल्य तेरह रूपया प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति है। यह चौबीस सौ केलोरी का लक्ष्य तो पंद्रह अगस्त सन् सैतालिस को पार करे भूख के कलंक से मुक्त हो जाना चाहिये था किन्तु साठ वर्ष बाद भी वह लक्ष्य अधूरा ही है। अब भी इक्कीस करोड़ लोग इस लक्ष्य के नीचे ही है। दूसरी ओर शिक्षा को मूल अधिकार में शामिल करके उसके नये नये लक्ष्य निर्धारित करने के प्रयत्न जोर शोर से होते ही रहते है। इन शोषक बुद्धिजीवियों का एक गुट ऐसे लक्ष्य बृद्धि की मांग करता है। और दूसरा गुट उसे पूरा करने का आश्वासन देकर पूरा करने की कोशिश करता है। छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री ने ऐसी भूख मिटाने की दिशा में सस्ते अनाज का एक सार्थक प्रयास अवश्य किया है किन्तु यह प्रयास तो एक बिल्कुल छोटा सा प्रयास है। वास्तव में तो भूख, गरीबी, और श्रम को अभी लम्बा संघर्ष करना बाकी है।

धूर्त लोगों ने शराफत को कमजोर करने के लिये कई प्रकार की तिकडम की है । ये इसी उद्वेश्य से नये नये कानून भी बनाते रहते है। स्वतंत्रता के बाद हरिजन आदिवासी आरक्षण एक ऐसा ही कानून था जिससे धूर्त बुद्धिजीवी मजबूत और शरीफ बुद्धिजीवी श्रमजीवी, गरीब, ग्रामीण कमजोर हुआ। इन धूर्तो ने हरिजन आदिवासियों की सुरक्षा के नाम पर सवर्णो के विरूद्ध बहुत कठोर कानून भी बनवा दिये। प्रचारित किया गया कि इस कानून से शराफत सशक्त होगी क्योंकि हरिजन आदिवासी धूर्त सवर्णो से सामान्यतया अपनी सुरक्षा नहीं कर पाते। लम्बे समय बाद इन कानूनों से होने वाले लाभ हानि का आकलन किया गया तो पाया गया कि इन कानूनों ने लगातार धूर्तता को मजबूत किया है और शराफत को कमजोर। छत्तीसगढ़ के कई जिलो में इसके लाभ हानि का आकलन हुआ जिसके एक जिले बिलासपुर की सरकारी तस्वीर यह है

कि उस जिले में वर्ष उन्नीस सौ पंचान्नवे से लेकर दो हजार पांच तक के ग्यारह वर्षो में बिभिन्न थानों में कुल पांच हजार छप्पन मामले हरिजन आदिवासी कानूनों के अन्तर्गत दर्ज किये गये। इन पांच हजार रजिस्टर्ड अपराधों में से पुलिस ने एक सौ छियान्नवे मामले सही पाये तथा अन्य लगभग चार हजार आठ सौ मामले असत्य घोषित करके निरस्त कर दिये। इन एक सौ छियान्नवे मामलों में से भी ग्यारह वर्षो के कार्यकाल में सिर्फ दस अपराधियों को ही सजा हुई। शेष सभी न्यायालय द्वारा निर्दोष सिद्ध हो गये। त्वरित न्याय प्रयत्न के कारण कोई मुकदमा लंबित भी नही है। ये आंकडे चौकाने वाले हो सकते है किन्तु है सच। बिलकुल ही प्रमाणित सच है कि पांच हजार छप्पन अपराधिक पंजीकृत अपराधों में से सिर्फ दस ही सच सिद्ध हुए। बाकी सब न्यायालय और पुलिस द्वारा झूठे पाये गये। स्पष्ट है कि या तो ये मुकदमे धूर्त अवर्णो ने शरीफ सवर्णो को परेशान करने के उद्वेश्य से खड़े किये थे या धूर्त सवर्णो ने शरीफ अवर्णो के विरूद्ध अपराध करके भी प्रशासनिक मिली भगत से स्वयं को निर्दोष सिद्ध कर दिया। स्पष्ट है कि इस आकलन के आधार पर धूर्तता अधिक मजबूत हुई है और शराफत कमजोर चाहे वह धूर्तता अवर्णो की मजबूत हुई हो चाहे सवर्णो की किन्तु मजबूत तो हुई ही है और हरिजन कानूनों ने ऐसी धूर्तता को मजबूत करने में सहायता की है।

कुछ अवर्णो के इस तर्क में भी सच्चाई है कि इन कानूनों ने सम्पूर्ण रूप से हरिजन आदिवासियों का मनोबल ऊचा किया है। किन्तु यह बात और भी अधिक सच है कि इन कानूनों ने जिस मात्रा में शरीफ अवर्णो को मजबुत किया उससे कई गुना अधिक इन कानूनों ने शरीफ को कमजोर किया है। यदि कुल मिलाकर शराफत कमजोर होकर धुर्तता मजबुत होती है तो चाहे वह सवर्णो की हो या अवर्णो की है तो नुकसान देह ही। और धूर्त लोग दो गुटों में बंटकर लगातार ऐसे कानूनों को मजबूत से और ज्यादा मजबूत बनाने के प्रयत्नों में सक्रिय रहते है। क्योंकि शरीफ बिल्लियों की रोटी लोकतांत्रिक तरीके से बंदर द्वारा खा लिये जाने में ये कानून ही तो सहायक हुआ करते है।

साठ वर्षो से जारी ऐसे जातीय आरक्षण तथा हरिजन आदिवासी कानूनों से न गरीबों को लाभ हुआ न ग्रामीणों को और न ही श्रम को। इसके विपरीत इन कानूनों ने धूर्त बुद्धिजीवियों को मजबूत किया और शरीफ बुद्धिजीवियों को कमजोर। खर्च के लिये करोड़ो रूपये जनता से टैक्स के रूप में वसूल करना, जाति व्यवस्था को जीवित करना, श्रम के साथ विश्वास घात करना आदि आदि नुकसान उठाकर ग्यारह वर्षो में दस अपराधियों को सजा दिलाने के परिणाम को यदि धूर्तो का षडयंत्र न माना जाये तो क्या माना जाये। श्रमजीवी तो बेचारे नून, तेल, लकड़ी के चक्कर में ऊपर उठने की स्थिति में नहीं है। धूर्त अवर्णो और धूर्त सवर्णो के बीच नापाक गठबंधन हो चुका है परिणाम संपूर्ण शराफत को भुगतना होगा। इसलिये सभी शरीफो को सब प्रकार के धर्म जाति सवर्ण अवर्ण का भेद भुलाकर इस धूर्त षडयंत्र के विरूद्ध एक जुट आवाज

उठानी चाहिये। अन्यथा धर्म और जातियॉ तो रह जायेगी, राज्य भी बचे रह जायेगें किन्तु शराफत अपराधियों और धूर्तो की गुलाम हो जायेगी।

(ख)कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न — आध्यात्म धर्म समाज और राज्य विषयों पर आप बोलते तो रहते है किन्तु आपने चारों का अन्तर कभी नहीं बताया। यदि आप इनका अन्तर स्पष्ट करें तो बहुत अच्छा होगा।

उत्तर — इनका अन्तर बताना अत्यन्त कठिन कार्य है इसलिये मैं इनकी व्याख्या करने से बचता रहा हूॅ। फिर भी मैं इन चारों पर सोचता अवश्य हूॅ। मेरे विचार से इस तरह अन्तर किया जा सकता है **1** राज्य की आदर्श भूमिका होती है समाज की प्रत्येक इकाई को सुरक्षा और न्याय की गारंटी देना। ऐसी इकाईयॉ तीन होती है। **1.** व्यक्ति **2** परिवार **3** समाज। गॉव जिला प्रदेश राष्ट्र आदि समाज की आन्तरिक व्यवस्था की इकाइयॉ है न कि कोई स्वतंत्र इकाई। परिवार अवश्य ही एक स्वतंत्र इकाई होती है। व्यक्ति परिवार तथा व्यवस्था की अन्य इकाइयॉ एक दूसरे की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप न करें इसकी गारंटी देना राज्य का दायित्व है। किन्तु प्राचीन समय के राजतंत्र में भी राज्य स्वयं को सुरक्षा और न्याय के दायित्व के साथ साथ समाज का मालिक समझने लगा था और वर्तमान लोकतंत्र में उसकी भूमिका और भी खराब होकर सुरक्षा और न्याय के दायित्व से तो कमजोर हो गई है किन्तु मालिक बनने के लिये समाज को बांट कर रखने में ज्यादा सक्रिय है। राज्य व्यवस्था रक्षक के स्थान पर विध्वंसक का स्वरूप ग्रहण करती जा रही है।

02 धर्म — व्यक्ति परिवार और समाज को कर्तव्य की दिशा में प्रेरित करता है। धर्म या तो व्यक्तिगत होता है या संस्था के स्वरूप में। धर्म भी कभी संगठन का रूप नहीं लेता क्योंकि संगठन की आवश्यकता कर्तव्य के साथ कभी नहीं जुड़ती। संगठन हमेशा ही अपनी सुरक्षा के लिये बनाये जाते है, दूसरों के लिये नहीं। धर्म का जो सैद्धांतिक रूप है वह टूट टूट कर संगठनात्मक स्वरूप में बदल रहा है। इस्लाम के बाद तो पूरी तरह स्पष्ट ही दिखने लगा है कि धर्म अपना धर्म छोड़कर संगठन बनने की दिशा में अग्रसर है। धर्म में नाम पर होने वाले हिंसक टकराव इसी विकृति का परिणाम है। अब तक हिन्दुत्व इस विकृति से बचा हुआ है किन्तु हिन्दुओं के भी कई संगठन भिन्न भिन्न नामों से इस दिशा में लगातार प्रयत्नशील है।

03 आध्यात्म— आध्यात्म व्यक्ति को स्वकेन्द्रित आत्म चिन्तन की दिशा में प्रेरित करता है। आध्यात्म व्यक्ति को गंभीर चिन्तक, सूक्ष्म अन्वेषण में सक्षम, एकान्त प्रिय, निष्क्रिय, अव्यावहारिक उच्च सिद्धान्तवादी दिशा देता है। आध्यात्म की लाईन पर चलने वाला न तो कभी दूसरों के लिये समस्या पैदा करता है न ही समाधान में बढ़ चढ़ कर भाग लेता है। परिवार गॉव समाज में उसकी रूचि कम होती जाती है। उसमें शराफत

बढ़ती जाती है और समझदारी घटती जाती है। आध्यात्म व्यक्ति को भोग से दूर त्याग की दिशा में बढ़ाता है ।

समाज– समाज शासन, धर्म आध्यात्म आदि सभी इकाइयों से बड़ा होता है। इसमें दूनिया के सभी व्यक्ति शामिल है जो घोषित रूप से समाज विरोधी सिद्ध नहीं है। कुछ लोग तो ऐसे अपराधियों को भी समाज का अंग मानते है। समाज शास्त्र भी व्यापक अर्थ वाला होता है। इसमें धर्म, संस्कृति, आध्यात्म राज्य आदि सबका आंशिक समावेश हो जाता है। समाज शास्त्र व्यक्ति को विचार संकुचन से हटाकर विचार विस्तार की दिशा देता है, स्व चिन्तन के हटाकर सर्व चिन्तन की ओर सक्रिय करता है तथा सिद्धांतों का व्यावहारिकता से ताल मेल कराता है। समाज एक अदृश्य इकाई है जिसका न कोई संगठन है न ही कोई निश्चित कार्य प्रणाली।

समाज शास्त्र व्यक्ति को देश काल परिस्थिति अनुसार शराफत या समझदारी में से एक चुनने की सलाह देता है। धर्म और राज्य में कई विकृतियॉ आई है किन्तु समाज की मान्यताओं में अब तक कोई विकृति नहीं आई। बड़ी संख्या में स्थापित महापुरूषों तक ने भी कभी राष्ट्र को समाज से बड़ा बताने को प्रयत्न किया तो कई ने धर्म या जाति को। ऐसे प्रचार का आंशिक प्रभाव भी पड़ा। समाज की एकता छिन्न भिन्न भी हुई किन्तु समाज रहा हमेशा सबसे उपर ही।

मैने उपर जो कुछ लिखा है वह मेरा निष्कर्ष नहीं है बल्कि अब तक का अनुभव मात्र है। ऐसे गंभीर विषय पर और अधिक विचार मंथन की आवश्यकता है। संभव है कि आपके सहयोग से इस दिशा मे बढ़ सकूॅ।

प्रश्नोत्तर

(ग)1 प्रश्न – श्री ओमपाल सिंह जी मेरठ

आपकी विशेष अनुकम्पा से ज्ञान तत्व का निरन्तर अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हो रहा है। आपके सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं पर मौलिक चिंतन से मैं बहुत प्रभवित हूॅ। अनेक मानसिक गुत्थियॉ भी सुलझी है जिसके परिणाम स्वरूप यथा सम्भव अभिव्यक्ति का अवसर भी मिलता रहता है। मेरे सामने इस समय मुख्य समस्या यही है कि इसके प्रचार और प्रसार हेतु जितना समय दिया जाना चाहिए किन्हीं परिस्थितियों के कारण नहीं दे पा रहा हूॅ। भविष्य में समय अवश्य निकलेगा ऐसी आशा है।

मन में उठने वाले कई प्रश्नों का उत्तर कई बार ज्ञान तत्व का अध्ययन करते हुए और कई बार आपके साथ साक्षात वार्ता से मिलता रहता है। फिर भी सामाजिक और राजनैतिक परिवेश के निरन्तर बदलते स्वरूप और उठने वाली समस्याओं के कारण मन में नये नये प्रश्नों का उठना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है और उनका हल पारस्परिक वार्ता से अधिक अच्छा निकाला जा सकता है ऐसा मेरा मानना है। इसी भाव से प्रेरित होकर मन में उठने वाली कुछ शंकाओं को लेकर आपके साथ सहभागिता करना चाहता हूॅ। अपेक्षा है सार्थक हल पर पहुॅच सकूॅगा।

ज्ञान तत्व के अंक 165 में आपने धार्मिक कट्टरवाद पर एक तथ्यात्मक अभिव्यक्ति की है। कट्टरवादी व्यक्ति अपनी निष्ठाओं को स्थापित करने हेतु किसी भी सीमा तक जा सकता है। औचित्य और अनौचित्य की बाध्यताओं से उसका कोई लेना देना नहीं होता वह केवल अपनी मान्यताओं को स्थापित होते हुए देखना चाहता है ,किसी सीमा तक सत्य के निकट दिखाई देना चाहता है। यहां पर अंकित मुस्लिम कट्टरवाद में धार्मिक कट्टरवाद का स्वरूप दिखायी देता है जो एक निश्चित मार्ग पूजा पद्धति और जीवन शैली की बाध्यताओं का पोषक है। दूसरी धारा साम्यवाद की है जिसमें धार्मिकता का लोप है। समाज पर राजनैतिक आर्थिक और वैचारिक नियंत्रण उनकी बाध्यताओं में है ऐसा लगता है। तीसरी कट्टरता संघ परिवार की है जिसकी जिसकी ओर आपने संकेत किया हैं। संघ परिवार की कट्टरता का आधार क्या हैं? इसे थोड़ा स्पष्ट करने की आवश्यकता है। संघ की कार्य पद्धित का मूल भूत आधार दैनिक साप्ताहिक पाक्षित या मासिक एकत्री करण है जिसे शाखा कहते है और उस शाखा में जैन, सिक्ख ,आर्य समाजी, शैव ,वैष्णव अर्थात सरकारी निराकारी ईश्वर वादी या अनीश्वर वादी और कहीं कहीं इक्का दुक्का मुसलमान भी सम्मिलित होते हैं। तथा ऐसे लोग भी होते हैं जो प्रायः संघ की शाखा में शारीरिक करते हैं और शाम को आपकी चिन्तन बैठक में सम्मलित होने में भी उन्हें कोई परेशानी नहीं होती। ऐसी स्थिति में संघ परिवार की कट्टरता का बिन्दु कहॉ है? थोड़ा स्पष्ट करें।

आपने संघ परिवार शब्द का प्रयोग भी किया है इस विषय में मेरा अनुभव कुछ ऐसा है कि संघ शाखा लगाने के अलावा दूसरा कोई कार्य नही करता जिससे संगठन तत्व प्रभावी होता है। राष्ट्र और समाज के प्रति समर्पण का भाव वहा की जीवन दिशा और प्रेरणा होती है। समाज हितार्थ जो भी उचित और आवश्यक लगता हो अपनी अपनी रूची के अनुसार प्रत्येक स्वयं सेवक को कार्य चुनने की स्वतन्त्रता है। अतः संघ को स्वयं सेवक अपनी शक्ति का प्रयोग समाज हितार्थ करें इतना ही आग्रह व अनुरोध वहॉ होता है। वहॉ अन्य परिवार जैसी कोई इकाई नहीं है । वि. हि. परिषद विधार्थी परिषद ,मां. म. संघ हिन्दू जागरण मंच बजरंग दल ,वनवासी कल्याण आश्रम धर्म जागरण मंच सेवा प्रकल्प , विधा भारती आदि जो अनेक कार्य या संगठन दिखाई देते है इन सबकी स्वतंत्र रचना है स्वतंत्र कार्य पद्धति है, रीति नीति का निर्माण और परिवर्तन करने वाली संरचना अर्थात बाडी है उसमें संघ के स्वयं सेवक भी सम्मिलित है और ऐसे लोगों की भी बहुत बड़ी सख्या है जिनका संघ की

शाखा, कार्य शैली, विचारधारा आदि से कोई लेना देना नही है और समर्पित भाव से कार्य करते है। संघ की ऐसे किसी भी संगठन पर कोई बाध्यता नहीं है। अतः संध परिवार से आपका तात्पर्य किससे है यह मैं नहीं समझ पाया हूॅ। आपके साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर कार्य करने में अनेक लोग संघ के स्वयं सेवक भी है तो क्या आप भी संघ परिवार के अंग है।

कहते है कि श्रेष्ठ लक्ष्य को प्राप्त करने हेतू साघन और पथ दोनों का श्रेष्ठ होना बहुत आवश्यक है। इनके अभाव में कार्य की उचित दिशा और दशा सम्भव नहीं है। इनकी श्रेष्ठता के लिए सदैव प्रयास रहना चाहिए ऐसा मेरा मानना है। इसके साथ साथ साघन और पथ की श्रेष्ठता देश, काल और परिस्थिति के आधार पर कई बार परिवर्तित होती रहती है तब उसके परिवर्तित रूप को स्वीकार करने की भी मानसिकता चाहिए ऐसा मेरा मानना है।

अपने चिन्तन व सोच को सर्वोपरि मानकर चलना अर्थात मेरा ही पथ इस सृष्टि को सदमार्ग के दर्शन करा सकता है सब प्रकार की समस्याओं से मुक्ति दिला सकता है ऐसा सोचकर उसकी स्थापना हेतु किसी के भी प्रति अज्ञानता वश या पूरी जानकारी के अभाव में कुछ भी जली भुनी बाते बोलना या हिंसात्मक वृत्ति का प्रदर्शन करना चाहे वह शारीरिक या मानसिक किसी भी प्रकार की हिंसा क्यों न हो मुझे नहीं लगता कि किसी दूसरे को अपने निकट ला सकती है जो कि सम्भव था। ऐसी वृत्ति का पालन चाहे प्रज्ञा ठाकुर के द्वारा हो या किसी अन्य अनपेक्षित व्यक्तित्व के द्वारा। साध्वी प्रज्ञा ठाकुर यदि कोई अमानवीय अपराध करती है तो उसकी सजा उसे मिलनी चाहिए लेकिन दोष सिद्ध हो जाने से पहले मैं इस विषय में कुछ भी कहने की स्थिति में नही हूॅ। उसके अपराध का निर्धारण करने हेतु साक्ष्यों का संग्रह आवश्यक है जो शोध का विषय है और यह सब पूर्ण ईमानदारी से किया जाये किसी अमानवीयता की प्रक्रिया का पालन करके नहीं जैसे गन्दी साडियॉ दिखाकर, कौमार्थ भंग करने की धमकी देकर शिष्य के द्वारा पिटवाकर, शारीरिक व मानसिक यातनाये देकर जैसा कि प्रज्ञा ठाकुर को कोर्ट के समक्ष अभिव्यक्ति के विषय में समाचार पत्रों में पढ़ने को मिला है। इस विषय में आप अपना मत और स्पष्ट करेंगे तो संतुष्टि मिलेगी।

धर्म परिवर्तन के संबंध में बहुत अधिक भावाभिव्यक्ति न करते हुए मेरा मत इतना ही है कि यदि सुबह का भटका शाम को घर आ जाये तो उसमें किसी को क्या आपत्ति होनी चाहिए? इतना अवश्य हो कि उसके ऊपर लोभ, लालच, प्रताड़ना, धमकी आदि शस्त्रों का आघात न किया जाये। यह स्वयं प्रेरणा से हो। हरियाणा के पूर्व उपमुख्य मंत्री चंद्र मोहन की स्वार्थ लोलुप कुत्सित धारणाओं जैसा स्वरूप उसके पीछे न हो।

आपने हिन्दुत्व की सुरक्षा का हल आतंकवाद व साम्प्रदायिकता को न मानकर धर्म निर्पेक्षता अर्थात् समान नागरिक संहिता को माना है। धर्म निर्पेक्षता से आपका तात्पर्य क्या है? धर्म और पूजा पद्धति को आप एक मानते है या अलग? कोई भी

व्यक्ति या राष्ट्र या राज्य या समाज अपना धर्म त्यागकर या उससे निर्पेक्ष होकर चलेगा तो उसकी क्या दशा होगी? इस पर आप मेरा मार्ग दर्शन करने की कृपा करें।

उत्तर– आपने एक साथ जितने प्रश्न उठाये है वे एक पूरे ज्ञानतत्व की आवश्यकता रखते है। किन्तु सभी प्रश्न महत्वपूर्ण है, एक महत्वपूर्ण मित्र द्वारा किये गये है तथा प्रश्नों में समझने समझाने की ईमानदार नीयत है इसलिये मैं सभी प्रश्नों पर संक्षिप्त चर्चा करना उचित समझता हूॅ जिससे विचार–मंथन आगे बढ़ सके।

प्रश्न –1 संघ परिवार को कट्टर मानने का आधार क्या है?

02. संघ परिवार से आशय क्या है और कैसे है?

03. देश काल परिस्थिति अनुसार साधनों के चयन से इतना अधिक विरोध क्यों?

04. प्रज्ञा ठाकुर का जब अपराध सिद्ध न हो तब तक उस पर अमानवीय दबाव बनाना कितना उचित है?

05. यदि सुबह का भूला शाम घर आ जावे तो आपत्ति क्यों?

06. धर्म निरपेक्षता से आशय क्या?

मैं कट्टरता का आधार यह समझता हूॅ कि वह एक संगठन हो तथा वह अपने समर्थको को तर्क की उपयोगिता के विरूद्ध जाकर श्रद्धा और अनुकरण हेतु प्रेरित करें। संघ एक संगठन है। संघ अपने कार्यकर्ताओं को तर्क की महत्ता के विरूद्ध तर्क देता रहता है। मैंने कई बार सुना है कि तर्क के आधार पर किसी निष्कर्ष तक नहीं पहुॅचा जा सकता। कई मामलों में यह बात सच भी है किन्तु तर्क के अतिरिक्त निष्कर्ष तक पहुॅचने का अन्य क्या तरीका है? तर्क करने की आदत से बहुत क्षति होती है किन्तु ऐसी आदत खराब है न कि तर्क की उपयोगिता। मैंने तर्क की उपयोगिता के महत्व को भी समझा है और उसकी सीमाओं को भी।

मैं लम्बे समय से भाजपा के पदाधिकारी के रूप में रहा आज भी मेरे परिवार रिश्तेदारों के कई महत्वपूर्ण सदस्य संघ के प्रति समर्पित है। मेरे जीवन की चार घटनाए इस संबंध में महत्वपूर्ण है :–

क. हमारे शहर के आम लोगों ने मिलकर तय किया कि किसी भी धर्म को मानने वाले कोई गुप्त बैठक नहीं करेगें। तय करने में संघ के स्थानीय कार्यकर्ताओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी किन्तु संघ के ऊपर के पदाधिकारियों ने विरोध करने में पूरी ताकत लगा दी। सर्वोच्च नेतृत्व तक बात गई कि यह नियम सिर्फ एक शहर पर लागू है न कि सब जगह। आप शहर के बाहर बैठक कर सकते है पर शहर में बैठक गुप्त नहीं होगी किन्तु वे लगातार टकराते रहे।

यहॉ तक कि तीन वर्षो तक संघ के टकराव के कारण वहॉ शाखा भी नहीं लग पाई। प्रश्न उठता है कि क्या किसी शहर के लोग ऐसा निर्णय नहीं कर सकते? अन्ततः तीन वर्ष बाद इस नियम को हटाना पड़ा। इस घटना का विस्तृत विवरण पूर्व में भी छपा है।

ख. संघ के प्रचारक से रामानुजगंज में पूछा गया कि संघ के स्वयं सेवक के माता पिता और संघ प्रमुख के बीच उसे किसकी बात को पहले मानने की शिक्षा दी जाती है तो उनका उत्तर था कि परिवार में वह परिवार की बात पहले मानते और संघ के कार्यक्रमों में संघ प्रमुख की। प्रश्न हुआ कि यदि संघ प्रमुख मेरे लड़के से कोई गुप्त बात कर रहा हो तो मुझे तीसरे व्यक्ति को श्रोता के रूप में सुनने का अधिकार है या उसके लिये अनुमति चाहिये तो उनका उत्तर था कि संघ कार्य करते समय वह स्वयं सेवक तब तक संघ प्रमुख के नियंत्रण में है जब तक वह वहॉ से छूट नहीं जाता। प्रश्न उठता है कि परिवार का अनुशासन और संघ के अनुशासन के बीच कौन बड़ा है? इस प्रश्न पर जब विवाद बढ़ा तो संघ के ऊपर वालों ने भी अपने तर्क को सही माना। जब इस संबंध में सार्वजनिक चर्चा की बात आई तो उन्होंने तर्क करने से इन्कार कर दिया।

ग.तीसरा प्रश्न तब आया जब बाबरी मस्जिद ध्वंस के एक वर्ष बाद अंबिकापुर की एक सार्वजनिक सभा में विषय से हटकर मुझसे मुलायम सिंह द्वारा गोली चलवाने पर प्रश्न किया गया। जिसमें मेरा उत्तर था कि शासक को कठोरता पूर्वक अपने आदेश का पालन सुनिश्चित कराना ही चाहिये। इस उत्तर के साथ ही वहॉ भारी हंगामा किया गया और हिंसा तक की आवाजे उठी। संघ के प्रमुख लोग अब भी यह मानने को तैयार नहीं है कि वहा हंगामा करना गलत था। मैं अपने कथन के औचित्य की चर्चा नहीं कर रहा। यदि किसी प्रश्न के उत्तर में मेरी सोच गलत है तो क्या मेरी जबान बल पूर्वक बंद की जायेगी?

घ.चौथा प्रसंग उस समय आया जब मैं भाजपा का जिला अध्यक्ष था और ठाकरे जी के बहुत निकट था। मैंने ठाकरे जी से पूछा कि मेरे विचार में शराफत ही हिन्दुत्व है और संघ की नजर में हिन्दुत्व ही शराफत। तो ठाकरे जी ने बताया कि संघ हिन्दुत्व को ही शराफत मानता है। मैंने पूछा की उचित क्या है तथा भाजपा क्या मानती है तो उन्होंने कहा कि भाजपा जो मानती है वह तुम भी जानते हो। मेरी तुम्हें अपने प्रिय होने के नाते सलाह है कि या तो स्वयं को एडजस्ट करो या स्वतंत्रता पूर्वक अलग मार्ग चुन लो। मैंने अलग मार्ग चुना।

मैं इन चारों घटनाओं को इस्लामिक कट्टरवाद के समान ही मानता हूॅ भिन्न नहीं।

2. संघ परिवार से मेरा आशय सिर्फ यही है कि जिन विभिन्न संगठनों के सर्वोच्च पदाधिकारी किसी मातृ संस्था के सर्वोच्च पदाधिकारी के आमंत्रण पर एक साथ बैठकर विचार मंथन करते हो उस मातृ संस्था का परिवार ही सबको माना जाता है भले ही सबका संगठन अलग अलग ही क्यों न हो। मैं अब तक यही समझता हूॅ कि भाजपा, विश्वहिन्दुपरिषद, विधार्थी परिषद , बजरंग दल आदि अलग अलग होते हुए भी इनके प्रमुख कर्ताधर्ता वर्ष में एक दो बार एक साथ बैठकर योजना भी बनाते है और इनका नेतृत्व संघ करता है। भाजपा का अध्यक्ष कौन बने इसकी चिन्ता सुदर्शन जी करते है और मार्ग दर्शन भी करते है। फिर यदि समाज में यही धारणा बने कि भाजपा अलग होते हुए भी संघ परिवार का एक घटक है जो संघ नियंत्रित तो नही है किन्तु मार्गदर्शित तो है। ऐसी धारणा को अस्वीकार करना संभव नहीं।

3.लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये देश काल परिस्थिति अनुसार साघनों में बदलाव कोई बुरी बात नहीं। मैं तो स्वयं ऐसे बदलाव का पक्षधर हूॅ। मैंने स्वयं रामानुजगंज में देश काल परिस्थिति के आधार पर समीक्षा करके नारा दिया कि शराफत छोड़िये समझदारी से काम लीजिये। या गर्व से कहो हम दो नम्बर है। ऐसे और भी नारे दिये गये जिनका अच्छा परिणाम दिखा। किन्तु यदि यह मानने का विश्वास हो जाय कि मार्ग नही बदला है बल्कि लक्ष्य ही बदल गया है तब क्या हो? स्वतंत्रता से पूर्व संघ राजनीति से दूर रहकर राजनीति पर अंकुश की बात करता था। स्वतंत्रता के बाद संघ सत्ता संघर्ष में शामिल हो गया। अब उसका लक्ष्य हिन्दू जागरण न होकर हिन्दू जागरण मार्ग बन गया है और लक्ष्य है सत्ता प्राप्ति। स्वतंत्रता के पूर्व हिन्दू जिस तीव्र गति से संघ के पीछे इकट्ठा हो रहा था वह गति स्वतंत्रता के बाद कहॉ चली गई? अब हिन्दुओं को यह क्यों महसूस हो रहा है कि संघ में ठहराव आ गया है और अब संघ कोई निर्णायक परिणाम नहीं दे सकता। मैं तो सिर्फ यही चाहता हूॅ कि संघ देश काल परिस्थिति के अनुसार सभी दलों को यह विश्वास करावे कि जो दल इस्लाम की चापलूसी करेगा उसे हराने में हम अपने पूरे प्रयत्न लगा देंगे। चाहे वह दल कोई भी क्यों न हो। मैं जानता हूॅ कि संघ ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि ऐसा करने से उसके अपने परिवार के सदस्य भारतीय जनता पार्टी के सामने संकट आ सकता है। मैं पुनः बता दूं कि संघ रूपी हाथी का पाव राजनीति के दलदल में धसता ही जा रहा है। अब हम या तो संघ की आशा में उसके पीछे चलते रहने की वफादारी निभावें या अपने लक्ष्य की दिशा में बढ़ने हेतु देश काल परिस्थिति के अनुसार विकल्प खोजें। मैंने दूसरा मार्ग चुना है।

मेरा संघ से कही विरोध नहीं है। मैंने आज तक किसी भी संघ छोड़ने के लिये नहीं कहा। अपने परिवार के सदस्यों को भी नहीं। क्योंकि संघ के प्रति मेरा आज भी लगाव इसलिये बना हुआ है कि वह शत्रु का शत्रु है और शत्रु का शत्रु स्वाभाविक मित्र बन ही जाता है। मैं समझता हूँ कि इस्लामिक कट्टरवाद मानवता के सबसे बड़े शत्रु के रूप में उभर रहा है और संघ या संघ परिवार उसका घोषित शत्रु है। दूसरी ओर मैं यह भी समझता हूँ कि संघ इस्लाम के विरूद्ध ईमानदारी से लड़ता ही रह जायेगा किन्तु परिणाम नहीं दे पायेगा क्योंकि उसका मार्ग गलत है। मेरी समझ में धार्मिक कट्टरवाद के विरूद्ध धार्मिक कट्टरवाद सफल हो नहीं सकता क्योंकि हिन्दू को कट्टर बनाने में कई सौ वर्ष लगेंगे और उतनी प्रतीक्षा करते करते तो इस्लाम की आंधी कुछ बचने ही नही देगी । इसलिये हम आह्वान कर रहे है कि हर प्रकार के कट्टरवाद आतंकवाद के विरूद्ध साझा मोर्चा बनाइये। यह अवसर हिन्दू ,मुसलमान, इसाई की चर्चा करने का नही है। यह अवसर है अस्तित्व की सुरक्षा का। राज्य व्यवस्था को आतंकवाद कट्टरवाद के विरूद्ध शक्ति दीजिये और समाज को इनके विरूद्ध तर्क दीजिये। यदि हम आम मुसलमानों को समझा सके कि हम मुसलमानों के विरूद्ध नहीं है किन्तु उन्हें आतंकवादियो और कट्टरपंथियों से दूर हो जाना चाहिये तो मुझे पूरा विश्वास है कि बहुत से मुसलमान इस बात को समझेंगे। आज तो भारत के आम मुसलमानों को विश्वास हो गया है कि कट्टरपंथी ही लड़ भिड़कर उन्हें अधिक फायदा दिलवा सकते है तो वे क्यों किसी अन्य की बात सुने? यदि संघ सब काम छोड़कर समान नागरिक संहिता और धर्म निरपेक्षता पर दृढ हो जाये तो मुसलमानों में भी दो गुट संभव है और वाम पंथियों में भी। लोग अवश्य ही इस बात को सगझेंगें। हिन्दू बहूमत तो समझ ही जायेगा। समझना है केवल संघ को कि वह हिन्दू राष्ट्र, हिन्दू एकत्रीकरण , राजनैतिक सत्ता आदि से बाहर निकले। मुझे अब भी विश्वास है कि हिन्दुओं की तर्क शक्ति इतनी भोथरी नहीं हो गई है कि तर्क के मामले में वह किसी अन्य से कमजोर पड़े। तलवार का मामला राज्य निपट ले। हम शस्त्र नही उठावेंगे क्योंकि अभी शास्त्र का प्रयोग करना बाकी है और जो लोग शास्त्र की बात न समझना चाहते है न समझाना और सिर्फ शस्त्र की ही बात समझ समझा रहे है उनसे राज्य पूरी ताकत से निपट लेगा इतना भरोसा रखिये। वह राज्य चाहे राजग का बने या संप्रक का इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

दस वर्ष पूर्व अटल जी प्रधान मंत्री बने थे। दस वर्षा की यदि समीक्षा करे तो भारत में हिन्दुत्व कितना आगे बढ़ सका। यदि और पांच वर्ष का अनुमान करे तो आप कौन सा तीर मारने वाले है। न हिन्दू इकट्ठा होगा न कुछ बदलेगा। मेरे विचार से तो अब संघ से निवेदन करने का समय आ गया है कि या तो आप दवा बदलिये या हम डाक्टर बदलने की सोचेंगे। अब आपके भरोसे तो मरीज को रखना संभव नहीं। खतरा बढ़ता ही जा रहा है। आतंकवादियों के समर्थन में संजरपुर गॉव के हजारों मुसलमानों ने रामलीला मैदान में खुली रैली की। मैंने भी वह रैली देखी है। क्या यह चिन्ता का आधार नहीं। क्या अगले पांच वर्षो में कोई बदलाव के

लक्षण है? आसमान से ऐसा विलक्षण होने वाला है कि भाजपा को दो सौ तिहत्तर से अधिक सीटे मिल जावे और जब तक उतनी सीट नहीं होगी तब तक आप कुछ कर नहीं पायेंगे। न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी और व्यर्थ में हमारी पूरी रात भी बर्बाद हो जायेगी। परिस्थितियॉ बिल्कुल साफ दिख रही है कि देश काल परिस्थिति के अनुसार संघ अपनी रणनीति बदले और यदि ऐसा न हो तो हम सब मिलकर संघ को अपनी रणनीति बदलने को मजबूर कर दें।

आपका सुझाव है कि जब तक अपराध सिद्ध न हो तब तक प्रज्ञा ठाकुर या पुरोहित जी के साथ अमानवीय व्यवहार ठीक नहीं। विचारणीय प्रश्न यह है कि वाटला हाउस में मारे गये युवकों पर क्या अपराध सिद्ध हो गया था? क्या गुजरात में साहराबुद्धीन पर कोई अपराध प्रमाणित था? क्या सरगुजा जिले के बलरामपुर में मारे गये नक्सलवादियों पर कोई अपराध प्रमाणित था? प्रज्ञा ठाकुर और पुरोहित जी के साथ अब तक जो भी अमानवीय हुआ है वह गुजरात और सरगुजा में घटित घटनाओं की तुलना में कुछ भी नहीं है। आतंकवाद के पक्ष विषय में मुसलमानों का भी दुहरा चेहरा दिखता है और साम्यवादियों का भी। इन दोनों की नकाब उतारने की जरूरत है न कि अपने चेहरे पर भी नकाब लगा लेने की। पुलिस कई बार अच्छी नीयत से भी अमानवीय व्यवहार का सहारा लेती है। हमें पहले अपना सोच साफ करना होगा कि हमारी स्पष्ट नीति क्या है। हिन्दू और मुसलमान के लिये अलग अलग नीति नहीं हो सकती। क्या प्रज्ञा ठाकुर न न्यायालय में जो कहा वह सब अक्षरशः सत्य है क्योंकि वह हिन्दू साध्वी है और बाकी हेमन्त करकरे या अन्य सब पुलिस वाले बिल्कुल झूठे है? यदि नतीजे आते तक चुप ही रहा जाता तो क्या बिगड जाता? पुलिस वाले या सरकारे हर मामले में जाल ही रचती है ऐसा प्रचारित करने से हिन्दू समाज को ही ज्यादा नुकसान होगा क्योंकि आपके आतंकवाद का तो एक मामला है और दूसरों का रोज का यही धंधा है। हेमन्त करकरे और मोहनलाल शर्मा की शहादत पर भी सवाल उठाने वालों की साम्प्रदायिक शक्ति इससे बढ़ती है क्योंकि पुलिस की कार्यप्रणाली पर आप भी वैसे ही सवाल उठा रहे है। यदि गलती हुई है तो चुप रहने में ही लाभ है और नहीं हुई तो परिणाम के बाद पूरी ताकत से सामने आना चाहिये। मैं तो अब भी समझता हूॅ कि प्रज्ञा ठाकुर और पुरोहित जी के मामले में परिणाम आने के पूर्व ही कुछ लोगो नें जो स्टैन्ड लिया उसने सम्पूर्ण हिन्दू समाज का बहुत नुकसान किया है। ऐसे गंभीर आरोपों में शर्मिंदा न होकर उल्टा अकड़ना कम से कम भारतीय संस्कृति तो कभी नहीं रही। अब भारतीय संस्कृति की कोई नई परिभाषा बने तो अलग है।

मैने पूर्व में लिखा है तथा पुनः लिख रहा हूं कि पुलिस द्वारा आरोपित व्यक्ति तब तक सामाजिक सहानुभूति का पात्र नहीं जब तक उसके निर्दोष होने की आपको व्यक्तिगत जानकारी न हो। क्योंकि उस व्यक्ति का आचरण तब तक संदेहास्पद अपराधी का है जब तक वह किसी स्थापित व्यवस्था द्वारा निर्दोष सिद्ध न हो जावे। आप मात्र विश्वास या लगाव के आधार पर किसी को निर्दोष नहीं कह

सकते। यदि प्रज्ञा ठाकुर और पुरोहित जी अब तक अपराधी सिद्ध नहीं हुए है तो वे अब तक निरपराध भी सिद्ध नहीं हुए है। सच जानने के लिये अमानवीय यातना उचित है या अनुचित उसकी सीमाएँ क्या हो तरीका क्या हो आदि विषय अब भी चर्चा के लिये खुले है। मै इस चर्चा को यहॉ शुरू नहीं कर रहा। मैं तो सिर्फ यही कहना चाहता हूँ कि मेरी नजर में हिन्दू और मुसलमान के आचरण में अलग अलग मापदण्ड नहीं है। मैं चाहता हूँ कि आपका भी ऐसा ही होना चाहिये। मेरी आपको सलाह है कि धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करनी चाहिये। दोनो प्रकार के तथ्य समाज के समक्ष प्रस्तुत होने के बाद हम समीक्षा कर सकते है। तब तक के लिये संघ परिवार ने जो भूल कर दी है उस से दूर रहे। प्रज्ञा ठाकुर और पुरोहित जी को संदिग्ध आतंकवादी मानकर हम उनकी वैसी समीक्षा कर सकते है जैसी मुस्लिम संदिग्ध आतंकवादियों की करते है। आज समाज को सामाजिक विश्वसनीयता की आवश्यकता है। संगठनों से तो ऐसी उम्मीद ही व्यर्थ है। हिन्दू और सिर्फ हिन्दू ही अब तक असंगठित है। वह भी संगठित हो जावे इसकी अपेक्षा वह भी सामाजिक विश्वास प्राप्त कर ले ऐसा प्रयास अधिक सार्थक होगा।

इस्लाम की एक मान्यता है कि संगठन में ही शक्ति है और शक्ति में ही सफलता। हिन्दू इसके ठीक विपरीत मानता है कि यथार्थ में ही सफलता है । शक्ति का उपयोग तो अन्तिम स्थिति में ही अपवाद स्वरूप होता है। इन दोनों विचार धाराओं में मौलिक अन्तर है। संगठन के आधार पर शक्ति सम्पन्न होकर इस्लाम ने सफलता पाई है यह सच है किन्तु हार मानकर हिन्दुत्व की धारा संगठन की दिशा में मोड़ दे अभी ऐसा समय नहीं आया है। अब वह समय आ रहा है जब इस्लाम को भी या तो अपनी धारा बदलनी होगी या समाप्त होना होगा। या तो वे सह अस्तित्व स्वीकार करेंगे या स्वीकार करा दिया जायेगा। धैर्य पूर्वक योजना बनाकर बुद्धि से काम करने की आवश्यकता है न कि जोश में भरकर भावनाओं के उबाल में आकर मरने मारने की।

5.यदि सुबह का भूला शाम को घर आ जावे तो मुझे आपत्ति नहीं। मुझे आपत्ति है ऐसे प्रयत्नों पर मैं देख रहा हूँ कि धर्म परिवर्तन एक संगठित प्रयास के रूप में उपयोग हो रहा है न कि व्यक्तिगत निर्णय के आधार पर। जब तक सरकार इस संबंध में कोई कानून नहीं बनाती तब तक हम किसी एक पक्ष को दोष नहीं दे सकते। संगठित प्रयास में तिकड़मों का उपयोग होता रहा है। हिन्दू संगठन भी धीरे–धीरे उस दिशा में बढ़ रहे है। ऐसी प्रवृत्ति की रोकथाम के लिये कड़े कानून बनने चाहिये। किन्तु घर वापसी भी ऐसे कानून से अलग नहीं हो सकती। क्योंकि जो भी नियम बनेंगे वे सब के लिये एक समान ही होंगे। कोई अपवाद नहीं है। धर्म परिवर्तन की स्वैच्छिक छुट होनी चाहिये किन्तु धर्म परिवर्तन कराने के प्रयत्नों पर रोक लगा दी जावे।

अभी हरियाण के उपमुख्यमंत्री को अपना दूसरा विवाह करने के लिये अपना धर्म बदलना पड़ा। स्वतंत्र भारत में धर्म और जाति के आधार पर कानूनों का बनना हमारे लिये दुख की बात है। हिन्दुओं के व्यक्तिगत या पारिवारिक मामलों में सरकार हस्तक्षेप कर सकती है किन्तु मुसलमानों के व्यक्तिगत या पारिवारिक मामलों में नहीं। ऐसे भेदभाव पूर्ण कानून के विरूद्ध हम क्यों नहीं खड़े हो रहे। ऐसे कानूनों को उखाड़ फेकिये। संघ परिवार इसमें उल्ठी दिशा में लड़ रहा है। उसका कहना है कि जिस तरह राज्य हिन्दुओं के व्यक्तिगत या पारिवारिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार रखता है वैसा ही मुसलमानों में भी अधिकार रखे। लोक स्वराज्य अभियान कहता है कि व्यक्ति के व्यक्तिगत परिवार के पारिवारिक और गॉव के गॉव संबंधी मामलों में राज्य न कोई कानून बनावे न दखल दे। आज तक किसी मुसलमान ने समान नागरिक संहिता की इस परिभाषा पर आपत्ति नहीं की। फिर संघ क्यों नहीं लोक स्वराज की इस परिभाषा को आधार बना लेता है। मैने संघ के प्रमुख लोगों को यह बात समझाने की कोशिश की किन्तु वे तो इसे समझने को ही तैयार नहीं। लाचार होकर मैंने यह बात समाज को बतानी शुरू की और एक दो वर्षो में ही संघ के भी बड़ी संख्या में कार्यकर्ता लोकस्वराज्य की अवधारणा को समझने लगे है। मुझे तो शर्म भी आती है और दुख भी होता है कि हमारे लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष स्वतंत्र भारत में धर्म के आधार पर ऐसे भी कानून बने है जिन्हें तोड़ने के लिये धर्म बदलकर तोड़ने की कानून में छूट प्राप्त है। अब हम लोगों ने लोक स्वराज्य के लिये कमर कस ली है। जो लोग सत्ता में जाकर समाज के लिये कुछ करने का आश्वासन दे रहे है ऐसे सत्ता लोलुप लोगों से हमारा कोई मतलब नहीं है। हम तो संघ के उन कार्यकर्ताओं से लोक स्वराज्य की अपील कर रहे है जो सत्ता में नहीं, समाज में रहकर जीने मरने के लिये तैयार है । संघ नेतृत्व हमारी भावनाओं को समझे तो भी ठीक और न समझे तो हम कर ही क्या सकते है।

06.धर्म निरपेक्षता का पूरा आशय पूर्व में कई बार स्पष्ट हुआ है। इस विषय पर रामकृष्ण जी पौराणिक उज्जैन द्वारा लिखित पुस्तक नई दिशा में भी सूत्र रूप में व्याख्या की गई है। धर्म के दो अर्थ है **1.** गुण प्रधान **2** संगठन प्रधान। गुण प्रधान व्याख्या व्यक्ति के आचरण से संबंधित है और संगठन प्रधान व्याख्या प्रचार से।

सत्य, अहिंसा, सर्व धर्मसमभाव, वसुधैव, कुटुम्बकम आदि धर्म की गुण प्रधान व्याख्या है और इस्लाम, इसाइयत, जैन, बौद्ध ,सिख आदि संगठन प्रधान। ये संगठन प्रधान व्याख्या वाले भी दोनों व्याख्याओं का धालमेल करते रहते है। चूँकि हिन्दू अब तक संगठन का स्वरूप नहीं ले पाया है इसलिये उसे संगठन कहे या नहीं यह बात स्पष्ट नहीं होती है। इसलिये ऐसा भ्रम हिन्दू धर्मावलम्बियों में स्वाभाविक है। धर्म निरपेक्षता से मेरा आशय उस परिभाषा से बिल्कुल नही जैसा आपने लिखा है। इस अनुसार तो राज्य धर्म निरपेक्ष हो ही नही सकता क्योंकि

गुणात्मक धर्म की स्थापना तो राज्य का प्रथम दायित्व है। किन्तु मेरा आशय संगठनात्मक धर्म से है जिसके अनुसार राज्य को संगठनात्मक धर्मो से स्वयं को निरपेक्ष घोषित कर लेना चाहिये।

आपने विचार मंथन के उद्वेश्य से अपने प्रश्न रखे। मेरे उत्तरों से हमारे अनेक पाठको की भावनाओं को ठेस लगती है जो मैं भी जानता हूॅ और आपने भी इशारा किया है। नीम कडवी है, नीम रोगी खाना नही चाहता, उस पर मीठी लपेठ प्रभाव खत्म कर देगी, नीम के अतिरिक्त कोई दवा उपलब्ध नहीं है। बताईये मैं क्या करूॅ। भावनाओं को नियंत्रित करके विवेक जागृत करना है। भावनाएॅ कहीं न कहीं आस्थाओं से जुड़ी है। आस्था पर चोट होते ही भावनाएॅ आह्त होती है। कुछ लोग या तो विरूद्ध हो जाते है या निष्क्रिय। कुछ लोग धीरे धीरे आस्थाओं को विचार के तराजू पर तौलना शुरू कर देते है। ऐसे ही विवेक वाले लोग हमारी पूॅजी है। हम लोगों ने ऐसे सबके साथ मिलकर सिर्फ एक विषय पर ही अन्तिम निष्कर्ष निकाला है और वह है लोकतंत्र को लोकस्वराज्य की दिशा में बढ़ाना। जो इस प्रकिया के विरूद्ध है हम उनके बिल्कुल विरूद्ध है चाहे वे कोई भी क्यों न हो। अन्य सभी मुद्दों पर हम विचार मंथन की प्रकिया में है। ऐसे सभी हजारों मुद्दों पर अनेक माध्यमों से एक दूसरे की बात को समझना भी है और समझाना भी है। उसी की एक कड़ी ज्ञान तत्व है जिसका पूर्वार्ध विचार मंथन के लिये समर्पित है। मैंने कुछ उत्तेजक बातें इसलिये लिखी कि प्रबुद्ध पाठक इस विचार मंथन में मुझे भी शामिल करके कुछ समझने समझाने का और अवसर दें।

आज ही नौ फरवरी के बीबीसी में संघ के एक प्रमुख स्तंभ राममाधव जी का प्रातः सवा आठ बजे साक्षात्कार सुनने को मिला। उन्होंने पूरी ईमानदारी से बिना लाग लपेट के स्पष्ट उत्तर दिये। उन्होंने जिस ढंग से कर्नाटक की श्री राम सेना द्वारा की गई हिंसा की गतिविधियों की समीक्षा की वह प्रशंसनीय है। काश ऐसी समीक्षा कभी सुदर्शन जी द्वारा सुनने को मिल जाती, यदि राम माधव जी के विचार संघ द्वारा प्रस्तुत सुविचारित निष्कर्ष है तो यह एक बहुत बड़ी बात है और यदि वह व्यक्तिगत विचार है तब भी महत्वपूर्ण तो है ही। जिस तरह उन्होंने हिंसा पर अपने दो टूक उत्तर दिये वैसे ही दो टूक उत्तर यदि लोक स्वराज्य पर भी दे सके तो एक बहुत बड़ी बात होगी।

अन्त में मैं संघ से अपेक्षा करता हूॅ कि वह राजनीति की अपेक्षा धर्म को और राष्ट्र की अपेक्षा समाज को सशक्त करने की बात सोचना शुरू करें। यदि ऐसी पहल की गई तो मैं तो पहले भी संघ का समर्थक था और भविष्य में भी आश्वासन देता हूॅ।

(घ)2. प्रश्न – श्री एम.एस. सिगला, अजमेर राजस्थान

सर्वप्रथम तो मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि किसी एक तथ्य (हिन्दू कोड बिल) को लेकर आपको लगा कि हिन्दुओं के साथ अन्याय हुआ है। सुप्रीम कोर्ट ने भी इस विषय पर ऐसे ही विचार व्यक्त किये है। अस्तु।

आपका 25 दिसम्बर का ज्ञान तत्व 168 के पृष्ठ 3 पर आपने लिखा है यदि गांधीजी जीवित होते तो हिन्दू कोड बिल बनने ही नहीं देते। गांधीजी के बारे में यह धारणा सही नहीं है। इस तथ्य पर चिन्तन करने के लिए तत्संबंधी कुछ और तथ्य इस प्रकार है –

यह आपका भ्रम ही समझता हूँ कि गांधी जीवित होते तो हिन्दू कोड बिल को रोक सकते थे। उसे रोकने में तत्कालीन राष्ट्रपति डा.राजेन्द्र प्रसाद भी सफल नही हो सके। उसके लिये कहा जाना चाहिये उनकी बलि ले ली गई। उन्होंने इस बिल पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया था। परिणाम यह हुआ कि समस्त लोकतांत्रिकता को ताक पर रख कर प्र.मंत्री नेहरू ने व्यवस्था दे दी थी कि राष्ट्रपति दूसरी बार पद पर नही रह सकेंगे।

गांधीजी एक महात्मा के रूप में ही लोकप्रिय रहे। राजनीति में विफल रहे । इस तथ्य को स्वीकारने में संकोच नहीं होना चाहिये। उन्हें उनके निकट के अनेक राजनेता पसन्द नहीं करते थे। उनमें नेहरू अग्रणी थे। इसके विपरीत गांधीजी ने नेहरू पर ही भरोसा किया था। गांधीजी के बारे में ये तथ्य दृष्टव्य है –

1. गांधीजी ने माउटबैटन से कहा था कि पाकिस्तान मेरी छाती पर बनेगा , जब कि वह भारत की छाती पर बन ही गया। तब नेहरू के खिलाफ वे अपने उपवास का हथियार नहीं उठा पाए,
2. गांधीजी ने कहा था कि देश आजाद हो गया है, अब पार्टी भंग कर देनी चाहिए। यह बात किसी को रास नहीं आई और ऐसा नहीं हुआ। तब गांधी की बेबसी ने उन्हें यह कहने पर विवश कर दिया था कि अब मेरी कोई नही सुनता।
3. गांधीजी ने कहा था कि हम बाहर से आए हुए अंग्रेज शासकों को तो निकाल सकते है, पर यहॉ बसे हुए मुसलमानों को नहीं निकाल सकते। इसके विपरीत जब स्वयं मुसलमानों ने ही देश के टुकड़े कराकर यहां से निकलने का सामान बना लिया तब उन्हें इस देश में रहने देकर उन्हें गाय के गले में लटकता पाया क्यों बना डाला गया?

इसके लिए किसे जिम्मेदार ठहराया जा सकता है? शायद इसलिए कि नेहरू जी मन से मुसलमान थे। फल यह है कि समस्या को सुरसा तो बनाया ही, आज भी इस देश के मूल निवासी दूसरे दर्जे के नागरिक बन कर रह गए है उन्हें साम्प्रदायिक, संकीर्ण मानसिकतावाले और न जाने क्या क्या समझा कहा जाता है।

हां विश्व पटल पर गांधी जी सराहे जाते है, याद किये जाते है। हमारे लिए तो यही बड़ी बात है। अभी भी नए अमरीकी राष्ट्रपति पद के समारोह के दौरान उन्हें याद किया गया। उनकी उक्तियों का वाचन किया गया।

कहने को तो बहुत कुछ हो सकता है, परन्तु इतना ही पर्याप्त है ।

उत्तर– मैने यह कहीं नहीं कहा कि हिन्दू कोड बिल हिन्दुओं के साथ अन्याय है। मैं तो यह मानता हूं कि धर्मनिरपेक्षता और धर्म के आधार पर कानूनों का निर्माण दो विपरीत अवधारणाएँ है। हिन्दू कोड बिल बनाना धर्मनिरपेक्षता के बिल्कुल विपरीत है और आज भी भारतीय लोकतंत्र के लिये एक कलंक है। इस बिल की आवश्यक बाते तो सब पर समान रूप से लागू कर दी जावे और अनावश्यक प्रावधानों को हटा दिया जावे। वैसे इसमें समाज और परिवार को तोड़ने वाले प्रावधान ज्यादा है और जोड़ने वाले कम। अच्छा हुआ जो मेरी हजारो धारणाओं मे से एक तो आप को अच्छी लगी।

हिन्दू कोड बिल गांधी जी रोक पाते या नहीं रोक पाते इस पर कोई चर्चा संभव नहीं है क्योंकि राजेन्द्र बाबू नहीं रोक सके इसलिये गांधीजी भी नहीं रोक पाते ऐसी आपकी सोच है मेरी नहीं।

गांधीजी राजनेता के रूप में सफल नही हो सके इसका कोई आधार इसलिये नहीं है कि स्वतंत्रता के बाद वे कुछ माह ही जीवित रह पाये। भविष्य में वे राजनीतिज्ञ के रूप में सफल होते या नहीं होते यह कल्पना का विषय है विचार मंथन का नहीं।

गांधी जी उपवास करके मर क्यों नहीं गये इसका आज तक बहुत लोगों को अफसोस है। गांधी स्वतंत्र भारत में लोकस्वराज्य व्यवस्था देखना चाहते थें। दूसरे कई लोग सत्ता सुख की जल्दी में थे। जिनमें नेहरू पटेल अम्बेडकर आदि सब शामिल थें। ये सब लोग स्वतंत्रता के बाद लोकस्वराज्य के पक्षधर नहीं थे बल्कि केन्द्रित शासन व्यवस्था चाहते थें। ऐसे कई लोग चाहते थें कि विभाजन के मुद्दे पर गांधी जी अपनी जान दे देते तो अच्छा होता किन्तु गांधी ने वैसा नहीं किया। हो सकता है कि गांधी जी ने सोचा हो कि विभाजन की अपेक्षा लोकस्वराज्य का मुद्दा ज्यादा महत्वपूर्ण है इसलिये वे उस मुद्दे पर मरने से पीछे हट गये हो। नेहरू को उन्होंने चुना यह उनकी भूल थी स्वार्थ था, मोह था, मजबूरी थी या और कुछ कारण था इस पर मैं समय नही लगाना चाहता। आप ज्यादा जानते होंगे क्योकि आप मुझसे अधिक बड़े भी है और गांधी जी की नीयत पर आपको बहुत अनुभव भी है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि विचार मंथन में गांधी की बाल की खाल तो बहुत निकल गई। अब ऐसे विषय चर्चा के लिये दूसरों पर छोड़ दे। अन्य विषय पर भी कुछ विचार मंथन हो तो अधिक सार्थक होगा।

(च)03.श्री राजकुमार शर्मा,द्धारा हिन्द कान्ति पाक्षिक,सुभाष युवा मोर्चा गाजियाबाद

प्रश्न — आज देश नायक विहीन क्यों हो गया है। साठ वर्षो से देश में लगातार कमजोरी आ रही है। हमें जिस तरह का नेतृत्व चाहिये वह मिलना तो दूर रहा अब तो हाल यह है कि उसके साधारण लक्षण भी दिखने बन्द हो गये। ऐसा क्यों हुआ और इसका समाधान क्या है ?

उत्तर — जब किसी देश में नायक की आवश्यकता महसूस हो तो मानकर चलिये कि तानाशाही का खतरा है। हम क्यों चाहते है कि हमारा कोई नायक हो जिसके आदेश पर हम आगे बढ़े। नायक की आवश्यकता संघर्ष के समय होती है। जब भारत गुलाम था तब हमने नायक तैयार किया। स्वतंत्रता के बाद तो अपनी अपनी व्यवस्था करने की जरूरत थी किन्तु हम नायक तैयार करते रहे और ऐसे तथाकथित नायक हमें धोखा देते रहे। अब भी हम नायक ही खोजने की भूल कर रहे है।

अच्छा यह होगा कि अब हम लोक स्वराज्य की राह पकड़े जिसमें कोई एक व्यक्ति न नायक होता है न नेता। प्रत्येक इकाई अपनी अपनी इकाई गत व्यवस्था करती है और यही व्यवस्था ऊपर तक चली जाती है। सबसे ऊपर का व्यक्ति हमारा राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री तो हो सकता है परन्तु जन नायक नहीं। नई परिस्थितियों में नयी प्रणाली से ही समाधान करना उचित रहेगा।